National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 141-144
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

अवधेश सिंह
शोध छात्र, योगविज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय - संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Correspondence:
अवधेश सिंह
शोध छात्र, योगविज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय - संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

अर्वाचीन एवं प्राचीन वेद भाष्यकारों का समीक्षात्मक अध्ययन

अवधेश सिंह

भूमिका

सृष्टि के आदि से ही ऋषियों व वैदिक विद्वानों का चिरन्तन विश्वास रहा है कि वेद सभी सत्य विद्याओं के ज्ञान का मूलाधार है। इस कथन की पुष्टि मनुस्मृति के वाक्य **'सर्वज्ञानमयो हि सः'**[1] से होती है। वेदों की रक्षा व जिज्ञासुओं के ज्ञानवर्धन हेतु समय-समय पर ऋषियों व वैदिक विद्वानों द्वारा वेदज्ञान को समाज तक पहुँचाने हेतु उन्हें सरलीकृत करने हेतु उस पर व्याख्या व भाष्य आदि ग्रन्थ लिखे गएं, किन्तु समस्या तब हुई जब एक ही ईश्वरीय वेदज्ञान को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न अर्थों में प्रस्फुटित किया, जिससे शिक्षा व सामाजिक क्षेत्र में वेदों को लेकर विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हो गयीं। जिसमें कुछ विद्वानों ने तो वेदों की यथार्थ व्याख्या व भाष्य प्रस्तुत किए तथा कुछ ने यत्र-तत्र वेद के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी बातों का उल्लेख किया है कि उसे पढकर किसी प्रबुद्ध व्यक्ति की या तो उस भाष्यकार से श्रद्धा हट जाएगी या फिर वेदों से। इसी कारण कुछ लोग प्रायः वेदों पर आक्षेप करते रहते हैं क्योंकि उनके पास वेदों का सही अर्थ नहीं पहुँचा। अतः जिसको जिस परम्परा से जो वेदज्ञान मिला वह वेदों को वैसा ही मानने लगे परिणामस्वरूप प्रचलित वेदज्ञान में यथार्थ और अयथार्थ का निर्धारण करना भी सामान्य व्यक्ति हेतु क्लिष्ट-कार्य हो गया।

कूट शब्द
वेदार्थ, द्वयाधिक अर्थक, यम-नियमादि, समत्वं, योगनिष्ठ, वैज्ञानिकता।

वेद के सम्बन्ध में प्रायः ऐसा प्राप्त होता है कि वेद के एक ही मन्त्र का भिन्न भाष्यकारों द्वारा भिन्न अर्थ किया गया है। पर क्यों ? मैं इसी प्रश्न के समाधान हेतु ईश्वरकृपा व गुरुजनों के आशीर्वाद व मार्गदर्शन से यह शोधपत्र लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। प्रायः लौकिक संस्कृत में किसी श्लोक का लगभग सभी विद्वान् एक जैसा अर्थ करते हैं किन्तु वैदिक मन्त्रों में अपेक्षाकृत अधिक भिन्नता दिखाई देती है जबकि वेद तो ईश्वरीय वाणी की सर्वोत्तम सार्थक रचना है फिर अर्थ की दृष्टि से इतनी असमानता क्यों ? यदि वेदमन्त्रों को द्वय-अर्थक अथवा द्वयाधिक अर्थक मान भी लिया जाय तब भी सभी भाष्यकारों के विशेष परिपेक्ष्यों में समान अर्थ होने चाहिए यथा राजनैतिक परिपेक्ष्य में जिसने भी भाष्य किया है सभी का भाव एक होना चाहिए किन्तु ऐसा अप्राप्य है। इसलिए यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि

जिसकी जैसी दृष्टि, उसकी वैसी सृष्टि।

वास्तव में क्या यह दृष्टि भिन्नता है अथवा कुछ और ? यदि कुछ और तो क्या ? कहीं इसका कारण राजनैतिक या साम्प्रादायिक अथवा शास्त्र मर्मज्ञता का अभाव तो नहीं अथवा उनके जीवन में यम-नियमादि युक्त वैदिक योग का अभाव तो नहीं। क्योंकि योगयुक्त जीवन व व्याकरण में प्रवीणता के अभाव में वेदमन्त्रों का यथार्थ अर्थ व भाष्य सम्भव ही नहीं है।

प्राचीन आचार्यों में आचार्य यास्क निरुक्त में वेदमन्त्रों के सार्थकत्व एवं निरर्थकत्व की ओर अध्येताओं का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं कि वेदमन्त्र सार्थक हैं या निरर्थक हैं। इसपर आचार्य कौत्स का मत है कि वेदमन्त्र निरर्थक हैं। जिसके सात कारण उन्होंने बताए हैं। तत्पश्चात् आचार्य यास्क ने सिद्धान्त पक्ष रखते हुए कहा है कि वेदमन्त्र सार्थक हैं।

प्राचीन आचार्य कौत्स कहते हैं कि वेदमन्त्र निरर्थक हैं जिसका कारण 'अनर्थका हि मन्त्रा:।'[2]

वेदमन्त्रों का पदक्रम व शब्द नियत हैं। अतः यदि मन्त्र सार्थक होते तो क्रम परिवर्तित किया जा सकता तथा पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग भी कर सकते किन्तु ऐसा नहीं है; यथा 'अग्निम् ईले पुरोहितम्'[3] में न ही क्रम परिवर्तित कर सकते हैं और न ही पर्याय का प्रयोग कर सकते हैं। अतः वेदमन्त्र निरर्थक हैं। इसके उत्तरस्वरुप आचार्य यास्क कहते हैं कि लोक भाषा में भी निश्चित क्रम वाले शब्द प्रयोग में मिलते हैं; यथा इन्द्राग्नी, पितापुत्रौ आदि।

द्वितीय हेतु के साथ आचार्य कौत्स कहते हैं कि 'मन्त्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों से किया जाता है'।[4] यथा 'उरु प्रथस्व'[5] का विनियोग 'शतपथ ब्राह्मण'[6] में 'इति प्रथयति' अर्थात् इसको फैलाओ किया जाता है। यदि मन्त्र सार्थक होते तो यहाँ विनियोग की क्या आवश्यकता थी ? इसके उत्तर में आचार्य यास्क का कथन है कि 'मन्त्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों से किया जाता है, यह विनियोग उदितानुवाद है अर्थात् कथित का स्पष्टीकरणमात्र है'।

इसीप्रकार निरर्थक के सन्दर्भ में अनेक उदाहरण प्राप्त होते है किन्तु सभी का प्रामाणिक समाधान करते हुए आचार्य यास्क वेदमन्त्रों को सार्थक सिद्ध करते हैं। इसी की पुष्टि हेतु एक उद्धरण यह भी प्राप्त होता है कि वेदमन्त्रार्थ परिज्ञान के सन्दर्भ में आचार्य शौनक बृहद्देवता में कहते हैं कि

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे-मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदार्थमवगच्छति।
अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्तिवति।
प्राधान्येन स्तुवन्भक्तया मन्त्रस्तद्देव एव स:।[7]

प्राचीन आचार्य शौनक वेदमन्त्रार्थ परिज्ञान हेतु जिस देवता के ज्ञान की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हैं उस देवता से अभिप्राय मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। इस विषय में आचार्य यास्क का एतद्विषयक कथन द्रष्टव्य है कि

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। सर्वानुक्रमणी में इसे श्या तेनोच्यते सा देवता'[8] शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

वेदमन्त्रों के भाष्य में विविधता को दर्शाते हुए वेदमन्त्र के कुछ वेदाचार्यों के भाष्य का उद्धरण निम्न है-

'गणानां त्वा गणपति (गूं) हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपति (गूं) हवामहे
निधिनां त्वा निधिपति (गूं) हवामहे वसो मम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्'।[9]

प्राचीन वेदभाष्यकार में महीधर का भाष्य- 'महिषी अश्वसमीपे शेते। अश्वदेवत्यम्। हे अश्व गर्भधं गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजानि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भधं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि'।

भाषार्थ- 'यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोती है। यह मन्त्र अश्व देवता वाला है। हे अश्व! तेरे गर्भ को धारण करने वाले वीर्य को मैं खैंचकर डालती हूँ और आप भी खैंचकर डालते हैं'।

अर्वाचीन वेदभाष्यकार में महर्षि दयानन्द का भाष्य- 'हे जगदीश्वर! हम लोग गणों के बीच गणों के पालनेहारे आपको स्वीकार करते हैं। अतिप्रिय सुन्दरों के बीच अतिप्रिय सुन्दरों के पालनेहारे आपकी प्रशंसा करते हैं। विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करनेहारों के बीच विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करनेहारे आपको स्वीकार करते हैं। हे परमात्मन्! जिस आपमें सब प्राणी बसते हैं, सो आप मेरे न्यायाधीश हूजिए। जिस गर्भके समान संसार को धारण करनेहारी प्रकृति को धारण करनेहारे आप जन्मादि दोषरहित भली-भाँति प्राप्त होते हैं, उस प्रकृति के धर्त्ता आपको मैं अच्छे प्रकार जानूँ'।

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जगहे।
ददाति मह्यं याशूनां भोज्या शता।।[10]

उक्त मन्त्र का सर्वप्रथम सायण भाष्य देखते हैं; सायणभाष्यम्- 'सम्भोगाय प्रार्थितो भावयव्यः स्वभार्यां रोमशाम् अप्रौढेति बुद्धया परिहसन्नाह- (भोज्या) भोगयोग्यैषा (आगधिता) आ-समन्तात् गृहीता स्वीकृता तथा (परिगधिता) परिगृहीता। गध्यं गृह्णातेरिति यास्कः। यद्वा (आगधिता) आश्वसमन्तान्मिश्रयन्ती आन्तरं प्रजनेन बाह्यं भुजादिभिः। कीदृशी सा... यादुरी बहुरेतोयुक्तेत्यर्थः। तादृशी सती (याशूनाम्) संभोगानां यश इति प्रजननानाम तत् सम्बन्धीनि कर्माणि याशूनि भोगाः तेषां (शता) असंख्यातानि मह्यं ददाति।'

प्राचीन वेदभाष्यकार में स्कन्दस्वामी इसी वेदमन्त्र की व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं-

'भावयव्यस्य। स स्वया भार्यया रोमशया संभुङ्क्ष्व है। मामित्युक्तस्तामनयर्चया प्रत्याह।... आगधिता आगृहीता आमिश्रिता अवयवैर्गाढं परिष्वक्ता सतीत्यर्थः। परिगधि ता सर्वतोऽन्तर्बहिश्च मिश्रिता आलिङ्गन - चुम्बन-को पुरस्सरं प्रक्षिप्त प्रजनना स्वानुरागं संभोगाय परिगृहीता च सतीत्यर्थः ।... याशूनां शता याशुशब्दः सम्भोगे, इन संभोगानां शतानि च । यच्छब्दश्रुतेस्तब्दोऽध्याहार्यः। सा भोज्या सा भोगार्हा संभोगयोग्या । त्वमत्यन्तबालत्वान्न तावदेवं रूपेत्यर्थः'।[11]

उक्त भाष्य में 'यश:' पद निघण्टु में 1.12, 2.7, 2.10 पर क्रमशः उदक, अन्न, धन, अर्थों में उद्धृत है। 'आचार्य सायण का यश इति प्रजननानाम कथन का आधार अनुपलब्ध है।'[12] निघण्टु व निरुक्त में सम्भोगानाम् पद के अनुपलब्ध होने के कारण आचार्य सायण व स्कन्दस्वामी द्वारा पद यशूनाम् का सम्भोगानाम् अर्थ करना चिन्तनीय है।

प्राचीन वेदभाष्यकार में वेंकटमाधव भी उक्त वेदमन्त्र का भाष्य करते हुए कहते हैं कि- 'आभिमुख्येन शरीरेण मिश्रिता या अङ्गैश्च मिश्रिता (कशीकेव) अत्यन्तं पुमांसं हस्ताभ्यां परिगृह्णाति नकुलस्त्री कशीका। (यादुरी) स्त्री यादिरभिक्रमणकर्मा। साभिक्रमणवती स्त्री (मह्यम्) (याशूनाम्) यशसा हर्तघ्णां पुत्राणाम्, भोगसाधनानि शतानि ददातीति। यदा भावयव्यरो-मशयोर्दम्पत्योरेव संवादस्त-दानीं प्राप्तयौवना यात पुमांसमालिंगते सा पुत्रजननयोग्या'।

प्राचीन वेदभाष्यकार में आचार्य दुर्ग ने भी उक्त वेदमन्त्र का अर्थ पूर्वोक्त भाष्यकारों के जैसा अश्लीलतायुक्त ही किया है।

आगधिता.... से अग्रिम मन्त्र में भी इन भाष्यकारों ने कुछ इसीप्रकार अर्थ किया है।

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥[13]

इस पर आचार्य सायण का भाष्य- 'रोमशा नाम बृहस्पतेः पुत्री ब्रह्मवादिनी परिहसन्तं स्वपतिं प्राह भो पते ! (मे) मां द्वितीयार्थे चतुर्थी (उपोप) उपेत्य (परामृश) सम्यक् स्पृश भोगयोग्याम् अवगच्छेत्यर्थः। यद्वा (मे) मम गोपनीयमङ्गम् (उपोपमृश) अत्यन्तमान्तरं स्पृश परामर्शाभावशङ्कां निवारयति (मे) मङ्ङ्गानि रोमाणि (दभ्राणि) अल्पानि मा बुध्यस्व। (अहम्) रोमशा बहुरोमयुक्ता अस्मि यतोऽहमीदृशी अतः (सर्वा) सम्पूर्णावयवास्मि रोमशत्वे दृष्टान्तः- गन्धारदेशीया मेषा इव यद्वा (गन्धारीणाम्) गर्भधारिणीनां स्त्रीणाम् (अविका) अत्यर्थं तर्पयन्ती योनिरिवास्मि यतोऽहमीदृशी अतो माम् अप्रौढ़ां मावबुध्यस्वेति'।

आचार्य दुर्ग का भाष्य- 'भावयव्यमेव सा (रोमशा) भर्तारं तेनानुपेयमाना ब्रवीति हे राजन् । (उप) उपगम्य (उप) उपश्लिष्य च (मे) मम (परामृश) संस्पृश। यो यः प्रदेशः पुरुषेण स्त्रियाः स्पृष्टव्यस्तं तं सर्वमेव यथेच्छं संस्पृश। अथ त्वम् अलोमकाऽल्पवयस्कासि कथं स्पृष्टव्येति प्रत्युक्तेवाह (मा मे दभ्राणि मन्यथाः) लोमानीति शेषः। दभ्राणि अल्पानि (निघ. 3. 2) लोमानि मे मन्यथाः। जानेऽहमेतत् यथा अलोमिकाया उपगम प्रतिषेध उक्तः स्मृतौ 'नाजात लोम्योपहासमिच्छेद्' इति। अतस्ते वेदयामि (सर्वाहमस्मि रोमशा) सर्वेष्वेवावयवेषु ममोत्पन्नानि रोमाणि येषु स्त्रीणाम् उत्पद्यन्ते। कथं च पुनरहमस्मि रोमशा (गंधारीणामिवाविका) गांधार (कंधार) देशजातानामवीनां मध्ये यथा (अविका) हस्वा अविः तस्या रोमाणि सघनानि मृदुलानि च भवन्ति, एवमहमस्मीति निःशंकमुपगच्छ मामिति भावः'।[14]

'उक्त दोनों वेदमन्त्रों से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य सायण[15], स्कन्दस्वामी[16] आदि ने अनित्य इतिहास का निरसन कर ऊहा का सिद्धान्त तो स्थापित करते हैं, किन्तु भाष्य करते समय अपनी स्थापित मान्यता **'वेद में अनित्य इतिहास नहीं है'** के विपरीत अर्थ ही नहीं करते, अपितु अश्लीलता की पराकाष्ठा तक पहुँचाते हैं । उक्त दोनों मन्त्रों की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है' ।[17]

चारो वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद करने वाले ग्रिफिथ ने स्यात् उक्त वेदमन्त्रो के ऐसे भाष्यों को पढकर इनका पद्यानुवाद न करते हुए कहा है कि

'They look like a fragment of a liberal shepherd's love-song.'[18]

अर्थात् ये मन्त्र तो किसी उदार गडरिए के प्रेम संगीत के खण्ड प्रतीत होते हैं।

अर्वाचीन वेदभाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती उक्त 'उपोप में परामृश.....' वेदमन्त्र का अर्थ है कि 'पदार्थ (उपोप) अतिसमीपत्वे (मे) मम (परा) (मृश) विचारय (मा) निषेधे (मे) मम (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मन्यथाः) जानीयाः (सर्वा) (अहम्) (अस्मि) (रोमशा) प्रशस्तलोमा (गन्धारीणामिव) यथा पृथिवीराज्यधर्चीणां मध्ये (अविका) रक्षिका'।

भावार्थः- 'राज्ञी राजानं प्रति ब्रूयादहं भवतो न्यूना नास्मि, यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाऽहं स्त्रीणां न्यायकारिणी भवामि, यथा पूर्वा राजपत्न्यः प्रजास्थानां स्त्रीणां न्यायकारिण्योऽभूवन् तथाहमपि स्याम्'।

इसप्रकार जिस मन्त्र को अश्लीलता का प्रतिपादक कहा गया है (आचार्य सायण आदि भाष्यों के आधार पर) वही मन्त्र राजधर्म के निरूपक हैं, क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती पूर्ववर्ती किसी भी भाष्यकार का आश्रय न लेते हुए वैदिक पदों के यौगिक अर्थ को महत्व देते हैं'।[19]

ऐसे ही यजुर्वेद में अनेक स्थान पर उव्वट-महीधर व काण्व संहिता के भाष्य में आचार्य सायण ऐसी व्याख्या करते हैं जिससे कि वेदविद्या की प्रासंगिकता कम होती है और वेदों पर अनेक प्रकार के आक्षेप उठाए जाते हैं, लोगों की वेदों के प्रति श्रद्धा कम होती है।

निष्कर्ष

आचार्य सायण आदि ने वेदों पर विशिष्ट कार्य किया है किन्तु कुछ स्थानों पर उनके भाष्य पर अनेक आक्षेप उठाए गए हैं जो कि तर्कसंगत हैं । वेदमन्त्रों का सही अर्थ व भाष्य करने हेतु वेद से पूर्व योगनिष्ठ होना अनिवार्य है अन्यथा बिना योग के वेद के यथार्थ को जानना सम्भव नहीं हैं साथ ही वेदमन्त्रों के यथार्थ अर्थों की पुष्टि हेतु निरुक्त आदि का प्रामाणिक आधार होना चाहिए जिससे वेदमन्त्रों की सही व्याख्या अध्येताओं तक पहुँच सके । साथ ही उच्चस्तरीय विद्वानों को चाहिए कि विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम हेतु व वेदों के प्रचार-प्रसार हेतु ऐसे चयनित वेदभाष्य हों जिनसे समाज में वेदों के प्रति तार्किकता, वैज्ञानिकता आदि का भाव उत्पन्न हो।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. वेदपाल, डॉ., "महर्षि दयानन्द-वेदभाष्य का वैशिष्ट्य",आर्ष-ज्योतिः, वर्षम् 16, अंक: 198, जूनमास: 2025, पृष्ठ 33-38
2. कुमार, डॉ. सुरेन्द्र विशुद्ध मनुस्मृति, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, अष्टम् संस्करण, जुलाई-2017
3. यास्कमुनि, भगवद्दत्त, पण्डित, निरुक्त-शास्त्रम्, रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत, द्वितीय संस्करण, जनवरी 2024
4. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, ऋग्वेद भाष्यम्, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर, षष्ठम् संस्करण, वर्ष 2016
5. द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, वर्ष 2000
6. सरस्वती, महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद भाष्यम्, वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर, षष्ठम् संस्करण, वर्ष 2016
7. सायण, आचार्य, शतपथ ब्राह्मणम् (भाष्यम्), नाग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, वर्ष 1990
8. राय, रामकुमार (सम्पादक और अनुवादक), बृहद्देवता, चौखम्बा संस्कृत संस्थान
9. सायण, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृष्ठ 14, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, तृ.सं. 1976
10. Hymns of the Rigveda Vol-1-P-641

पादटिप्पणी -

[1]मनुस्मृति 2.7

[2]निरुक्त 1.15

[3]ऋग्वेद 1.1.1

[4]वैदिक साहित्य एवं संस्कृति की प्रस्तावना, पृष्ठ 14

[5]यजुर्वेद 1.22

[6]शतपथ ब्राह्मण 2.5.20

[7]बृहद्देवता 1.2,6

[8]निरुक्त 7.1

[9]यजुर्वेद 23.19

[10]ऋग्वेद 1.126.6

[11]स्कन्दस्वामी, निरुक्त 5.15

[12]आर्ष-ज्योतिः (रजतजयन्तीविशेषांक), महर्षि दयानन्द-वेदभाष्य का वैशिष्ट्य-डॉ. वेदपाल, पृष्ठ-34

[13]ऋग्वेद 1.126.7

[14]दुर्गाचार्य, निरुक्त टीका 3.20

[15]सायण, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृष्ठ 14, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, तृ.सं. 1976

[16]स्कन्दस्वामी, निरुक्त टीका, 2.12, पृ. 78

[17]आर्ष-ज्योतिः (रजतजयन्तीविशेषांक), महर्षि दयानन्द-वेदभाष्य का वैशिष्ट्य-डॉ. वेदपाल, पृष्ठ-35

[18]Hymns of the Rigveda Vol-1-P-641

[19]आर्ष-ज्योतिः (रजतजयन्तीविशेषांक), महर्षि दयानन्द-वेदभाष्य का वैशिष्ट्य-डॉ. वेदपाल, पृष्ठ-36